Dr Gargi Gupta Anuvad shri puraskar samman

Annie Montaut

▶ To cite this version:

Annie Montaut. Dr Gargi Gupta Anuvad shri puraskar samman. Smarika, 2012, 2012, pp.91-116. halshs-00773313

HAL Id: halshs-00773313
https://shs.hal.science/halshs-00773313

Submitted on 13 Jan 2013

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire HAL, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

डॉ. गार्गी गुप्त अनुवादश्री पुरस्कार-सम्मान वर्ष 2010-2011

श्रीमती एनी मॉन्टो

जन्म तथा स्थान : 7 मार्च, 1951, क्लेर्मों फेराँ, 63, फ्रांस

पता : 24 Rue des Marguettes (रु डे मार्गेट), 75012, पैरिस, फ्रांस

शैक्षिक योग्यता

(1) बी.ए. (लैटिन-ग्रीक), 1971, सोर्बोन विश्वविद्यालय, पेरिस

(2) बी.ए. (फ्रांसीसी साहित्य), 1971 सोर्बोन विश्वविद्यालय, पेरिस

(3) एम.ए. (आधुनिक फ्रांसीसी साहित्य), 1972 सोर्बोन विश्वविद्यालय, पेरिस

(4) एकोल नोर्माल सुपेरियर, पेरिस, सर्वप्रथम, 1970-74

(5) पीएच.डी. (फ्रांसीसी साहित्यकार सेलिन पर शोध-प्रबन्ध ा), 1981, क्वीन्स और मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा

(6) डी.लिट. (भाषाविज्ञान और शैली का अध्ययन), 1989, पेरिस

संप्रति : प्रोफेसर (हिंदी और भाषाविज्ञान), INALCO (National Institute for Eastern Languages and Civilisations), Paris-cite-Sorbonne.

प्रकाशित पुस्तकें : **क. मौलिक लेखन :** (1) Voix, aspects et diatheses en hindi moderne (आधुनिक हिंदी में वाच्य पक्ष तथा क्रिया-संरचना), Leuven, Peeters, 1991; (2) Hindi Grammar (हिंदी व्याकरण), Muenchen, Lincom Europa, 2003; (3) Le Hindi (हिंदी), Societe de

Linguistique de Paris : Mondes et Langues, Leuven, Peeters.

संपादन : (1) La transitivite (सकर्मकता) LINX 24, Presses de l'Universite de Paris-X, 1991; (2) Lectures de Benveniste (भाषाविज्ञान के सिद्धांत और इतिहास), LINX 26, Presses de l'Universite de Paris-X, 1992; (3) La notion d'objet (कर्म कारक और कर्ता), LINX 28, Presses de l'Universite de Paris-X, 1993; (4) Le Datif (संप्रदान कारक और कर्ता), Cahiers de Linguistique de l'INALCO 2, 2002; (5) Litteratures et poetiques pluriculturelles en Asie du Sud (आधुनिक बहुसांस्कृतिक भारतीय साहित्य पर), EHESS/CNRS, 2004; (6) La Saillance, Faits de Langue 39, 2012; इनके अतिरिक्त...

ख. हिंदी से फ्रांसीसी में अनुवाद : (1) Les Litteratures de l'Inde : la Novelle Contemporaine (समकालीन भारतीय साहित्यः कहानी संग्रह), F. Boschetti के साथ, Marseille, Sud 1991; (2) अनुपम मिश्र के उपन्यास 'राजस्थान की रजत बूँदें' का अनुवाद Traditions de l'eau au desert du Thar: Les Gouttes d'or du Rajasthan; (3) निर्मल वर्मा के उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' का अनुवाद Un Bonheur en lambeaux, Arles, Actes Sud, 2000; (4) कृष्ण बलदेव वैद के कहानी संग्रह (द्विभाषी संस्करण) का आमुख तथा टिप्पणियों सहित अनुवाद 'Histoire de renaissances, L'Asiatheque, 2002; (5) कृष्ण बलदेव वैद के कहानी संग्रह का अनुवाद, La Splendeur de Maya, Editions Caracteres, 2002; (6) अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइ-पास' का अनुवाद Kalikatha Gallimard, (Monde Entier); (7) निर्मल वर्मा के उपन्यास 'लाल टीन की छत' का अनुवाद Le Toit de tole rouge,

F. Auffret के साथ, Arles, Actes Sud, 2004; (8) जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' का प्राक्कथन तथा टिप्पणियों सहित अनुवाद Un Amour Sans mesure, Gallimard (Connaissance de l'orient); 2004, आमुख व टिप्पणियों के साथ; (9) केदारनाथ सिंह की चुनी हुई कविताओं का अनुवाद Dans Un pays plein d'histoires (द्विभाषी संस्करण, ल. जेकिनी के प्राक्कथन के साथ), Editions Caractere, 2007; (10) गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' का अनुवाद तथा प्राक्कथन Mai, une femme effacee, Lausanne, Infolio, 2009; (11) कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'गुजरा हुआ जमाना' का अनुवाद तथा प्राक्कथन Requiem pour un autre temps, Lausanne, Infolio, 2012, आमुख के साथ। इनके अतिरिक्त...

भाषाओं का ज्ञान : (1) हिंदी, अंग्रेज ी, स्पेनिश और जर्मन (लिखने, पढ़ने व बोलने की क्षमता); (2) इतालवी, रूसी (पठन-क्षमता); (3) संस्कृत, फारसी (व्याकरणिक ज्ञान, B.A. Sanskrit, Sorbonne, 1987)

❑

प्रो. एनी मॉन्टो से साक्षात्कार

प्रस्तुति : डॉ. ....

प्रो. एनी मॉन्टो जी, आपको भारतीय अनुवाद परिषद् के डॉ. गार्गी गुप्त अनुवाद-श्री पुरस्कार (2011-12) से नवाजे जाने के उपलक्ष्य में शतशः बधाइयाँ।

प्रश्न 1. : प्रो. एनी मॉन्टो जी, आप हिंदी अंग्रेजी और फ्रांसीसी के साथ लैटिन और ग्रीक में भी दक्षता रखती हैं और आपने भाषा-विज्ञान, भाषा-विश्लेषण, भाषा-शिक्षण तथा व्याकरण के क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य किया है। भारतीय अनुवाद परिषद की ओर से साधुवाद। आपको भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण और अनुवाद की दिशा में अभिरुचि किनसे और कैसे उत्पन्न हुई?

उत्तर 1. : हालाँकि अनुवाद के क्षेत्र में आरंभिक कदम रखने का मौक़ा मुझे हाई स्कूल और विश्वविद्यालय के स्तर पर ग्रीक और लैटिन के अनुवादों के माध्यम से ही मिल चुका था, फिर भी यह कहना ठीक न होगा कि मुझे इन भाषाओं की पूरी जानकारी है। आपको यह एक विरोधाभास लगेगा कि भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण और अनुवाद-कला में मेरी रुचि हिंदी या किसी दूसरी भाषा से परिचत होने से नहीं वरन् फ़्रांसीसी साहित्य के अध्ययन से ही पैदा हुई। फ़्रांसीसी भाषा के आधुनिक लेखक सेलीन (Louis-Ferdinand Céline)[1] की शैली का अध्ययन करते समय मुझे पहले साहित्य-विश्लेषण में शैलीविज्ञान तथा 'सेमियॉटिक्स' (semiotics) फिर भाषाविज्ञान के उपकरणों के उपयोग की आवश्यकता का अनुभव हुआ। साहित्यिक विश्लेषण से भाषाविज्ञान तक की मेरी उक्त शैक्षिक यात्रा इतनी लाभप्रद रही कि बाद में जब हिंदी भाषा से मेरा परिचय हुआ तो सबसे पहले मैंने 'हिंदी की क्रिया-व्यवस्था' पर अपना दूसरा शोध-प्रबंध तैयार किया। काफी समय बाद मैंने हिंदी की कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं को फ़्रांसीसी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया। मेरे विचार से हिंदी-साहित्य की अनेक रचनाएँ विश्व के महान साहित्य की श्रेणी में आती हैं। इस प्रकार पिछले दशकों में मेरी अध्ययन-यात्रा साहित्य से भाषाविज्ञान और भाषाविज्ञान से साहित्य तक लगातार जारी रही है। आज भी फ़्रांसीसी साहित्य में मेरी रुचि बरक़रार

है हालाँकि मैं इस समय इस क्षेत्र में अनुसंधान का कोई काम नहीं कर रही।

प्रश्न 2. : आपको निर्मल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, कृष्ण बलदेव वैद आदि विख्यात लेखकों के उपन्यासों का अनुवाद करते समय कैसी अनुभूति हुई? इस दौरान सांस्कृतिक प्रसंगों और स्थानीय शब्दों के अंतरण में दिक्कतें हुईं हों तो आपने उनका निराकरण कैसे किया?

उत्तर 2. : दरअसल हिंदी लेखकों की जिन रचनाओं का मैंने अनुवाद किया उनका ही नहीं बल्कि उन लेखकों की अन्य रचनाओं का भी मैं पहले अध्ययन कर चुकी थी। इस प्रकार मैं इन लेखकों के साहित्य-संसार से काफी हद तक वाक़िफ थी। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मेरे और इन लेखकों के बीच एक तरह की आत्मीयता पैदा हो चुकी थी। नतीजतन जब मैंने अनुवाद का काम शुरू किया तब तक लगभग आधा काम निबट चुका था क्योंकि मैं उनके साहित्य में वर्णित संस्कृति से पहले से ही परिचित थी। मैंने सदैव ही अनुवाद के लिए अपने प्रिय लेखकों की रचनाओं को चुना इसलिए मुझे इस काम में दिक्क़तें कम हुईं। इसके विपरीत जब अन्य रचनाओं के अनुवाद करने का प्रस्ताव मुझे मिला तो रचनाकार के साथ मेरी आत्मीयता अनुवाद-कार्य के दौरान बनी। उदाहरण के लिए अलका सरावगी के साहित्य-जगत से मेरी आत्मीयता उनके उपन्यास *'कलिकथा'* का फ़्रांसीसी अनुवाद करते समय बनी जिसे मैंने प्रकाशकों की माँग पर ही तैयार किया।

जहाँ तक अनुवाद के दौरान सांस्कृतिक तथा स्थानीय शब्दों के अंतरण की समस्या का प्रश्न है मेरे हिसाब से ऐसे शब्दों की तीन कोटियाँ बनती हैं। पहली कोटि में वे शब्द आते हैं जो दैनिक जीवन से जुड़े होते हैं। जैसे चपाती, दाल, गुरद्वारा, चारपाई आदि। दूसरी कोटि में हमें विरह, भक्ति, अनासक्ति या दर्शन जैसे अमूर्त शब्द मिलते हैं जिनका भारतीय संस्कृति में विशिष्ट अर्थ होता है। इन दो कोटियों के अतिरिक्त एक तीसरी कोटि भी होती है जिसमें साहित्य के उद्धरण तथा उल्लेख आते हैं। उदाहरण के लिए रचनाओं में कबीर या गालिब जैसे लेखकों की पंक्तियों के उद्धरण। पहली कोटि के शब्दों के अनुवाद की समस्या वस्तुतः प्रकाशक के निर्णय पर निर्भर करती है क्योंकि कुछ प्रकाशक शब्द-सूची या संदर्भ देना पसंद नहीं करते जब कि कुछ प्रकाशकों को इससे कोई ऐतराज नहीं होता।

मेरे अनुसार सूची देना सबसे अच्छा हल है। अजीब स्थिति यह है कि अंग्रेजी से सीधे फ़्रांसीसी भाषा में होने वाले अनुवादों में फ़्रांसीसी प्रकाशक हिंदुस्तानी (पंजाबी, उर्दू, हिंदी) शब्दों को हूबहू रखना पसंद करते हैं जबकि हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा से किए गए अनुवादों में वे इन शब्दों का अनूदित रूप रखना पसंद करते हैं। दूसरी कोटि के शब्दों के संदर्भ में एक उदाहरण देना चाहूँगी। जब 19वीं शताब्दी के संदर्भ में अंग्रेजी के 'हिस्ट्री' शब्द का अनुवाद करना पड़ा तो 'इतिहास' शब्द चुना गया जबकि इस शब्द को पहले दूसरे अर्थ में इस्तेमाल किया जाता था। परिणामतः 'इतिहास' शब्द को पुराने अर्थ की जगह एक नये अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा। इतिहास का प्राचीन अर्थ 'जो ऐसा हुआ', 'तथाकथित' (इति) था और इतिहास की श्रेणी में वाल्मीकि की रामायण, व्यास की महाभारत, पुराण तथा अन्य आख्यायिकाएँ आती थीं। 'हिस्ट्री' शब्द को 'इतिहास' शब्द के माध्यम से अनूदित करते समय प्राचीन अर्थ लुप्त हो गया और इसके साथ-साथ शब्द का जो प्राचीन बोध था वह भी बाद में बदल गया। भाषा प्रयोगकर्ताओं ने उस पुराने शब्द का नए अर्थ में प्रयोग करते-करते स्वयं को पश्चिमी आधुनिकता के नये रंग में रँग लिया और इस प्रकार, मैकोले की भविष्यवाणी पूरी हो गई।

गाँधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में इस बात की ओर संकेत किया है। अनुवाद के दौरान ऐसा अंतरण एक तरह से भारतीय संस्कृति पर किसी पश्चिमी धारणा को थोपना है। यहाँ तक कि कई इतिहासकारों[2] के अनुसार पश्चिमी ऐतिहासिक दृष्टिकोण ने भारतीय दृष्टिकोण की जगह ले ली है। तीसरी कोटि के अंतरणों में आने वाले उद्धरणों को मैंने फ़्रांसीसी काव्य से लिए उद्धरणों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। जैसे *'गुजरा हुआ जमाना'* के पहले भाग के अंत में गालिब, मीर और अन्य उर्दू शायरों की पंक्तियों को वैद साहब की सहमति से मैंने रासीन और कोर्नेय की पंक्तियों के माध्यम से अनूदित किया है। इन पंक्तियों के आशय को फ़्रेंच पाठक तक किसी अन्य रास्ते से पहुँचा पाना असंभव था। इन उद्धरणों के प्रयोग के पीछे जो व्यंग्यात्मक प्रभाव पैदा करने की प्रवृत्ति कार्यरत है उसे अन्यथा पाठक तक अविकल नहीं पहुँचाया जा सकता था। इसके विपरीत मैंने 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा' जैसे उद्धरणों को सीधे-सीधे पद्य में अनूदित किया क्योंकि भारतीय संस्कृति के विशिष्ट

ज्ञान के अभाव में भी फ़्रांसीसी पाठक को इस तरह के उद्धरणों का अर्थ पल्ले पड़ ही जाता है। अर्थात सीधे अनुवाद के माध्यम से भी साहित्यास्वादन में कोई विघ्न खड़ा नहीं होता। उसे जैसे-तैसे भारतीय साहित्य के रस की झलक मिल ही जाती है।

प्रश्न 3. : आपने कविताओं का भी अनुवाद किया है। काव्य अनुवाद के विषय में आपके विचार क्या हैं ?

उत्तर 3. : शुरू-शुरू में मुझे कविता का अनुवाद करने में थोड़ा संकोच होता था। यही कारण है कि सालों तक मैं काव्यानुवाद करने से कतराती रही। हालाँकि निर्मल वर्मा और कृष्ण बलदेव वैद की रचनाओं के अनुवाद की बदौलत मैं काव्यात्मक गद्य के अनुवाद के क्षेत्र में पहले ही क़दम रख चुकी थी और काफी हद तक हिंदी भाषा की पद्यात्मकता से वाकिफ हो चुकी थी, फिर भी बड़े कवियों की प्रतिभा के सामने अपनी अनुवाद-क्षमता को सीमित ही पाती थी। संक्षेप में मैं यही कहूँगी कि मैंने उन्हीं कवियों को चुना जिनका अनुवाद कर पाना मुझे संभव या साध्य लगा। उदाहरण के लिए केदार नाथ सिंह, नागार्जुन तथा हरिवंश राय बच्चन। लेकिन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक मिथकों से भरी रचनाओं जैसे धर्मवीर भारती के प्रबंधकाव्य 'अंधा युग' तथा कुँवर नारायण के खंडकाव्यों 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' आदि का अनुवाद मेरे लिए आज भी चुनौती बना हुआ है। कह पाना मुश्किल है कि मैं कभी ऐसी रचनाओं के अनुवाद का कार्यभार सँभाल पाऊँगी या नहीं। इस संबंध में मेरी धारणा यह है कि काव्यानुवाद में रचनाओं की मूल लयात्मकता तथा संगीतात्मकता को किसी दूसरी भाषा की तुकबंदी में समेटने का प्रयास करना रचना के साथ अत्याचार करना होता है। बहरहाल मेरे विचार से इस तरह की तुकबंदी के माध्यम से किए गए काव्यानुवाद किसी नौसिखिए के प्रयास जैसे होते हैं। जाहिर है कि सफल अनुवादक को ऐसे बेढंगे तथा रूढ़िगत प्रयासों से हमेशा कोसों दूर रहना चाहिए। हालाँकि यह बात पूरी तरह सही है कि काव्य का अनुवाद तो पद्य में ही हो सकता है, फिर भी अगर अनुवादक को अलेक्साड्रिन[3] जैसी छंदात्मक रूढ़ियों से बचना है तो उसे अपने अनुवाद में तुकबंदी भिड़ाने का निरर्थक प्रयास कदापि नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 4. : पर्याप्त समय से अध्यापन और अनुवाद से जुड़ी रहने के कारण आप अनुवाद के विभिन्न सिद्धांतों से परिचित हैं। इनमें से किस सिद्धांत का आप समर्थन

करती हैं?

उत्तर 4. : अनुवाद के क्षेत्र में वैसे तो कई सिद्धांतों का जिक्र किया जा सकता है लेकिन मैं दो सिद्धांतों पर जोर देना चाहूँगी। इनमें से पहले का संबंध हर तरह के अनुवाद और इंटरप्रेटेशन (तात्कालिक मौखिक अनुवाद) से है, जब कि दूसरे का केवल साहित्यिक अनुवाद से। सबसे पहले तो हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना है कि चाहे साहित्यिक अनुवाद हो या सामान्य (तकनीकी) अनुवाद ये दोनों मूलतः एक ही तत्व पर आधारित होते हैं। दोनों ही तरह के अनुवादों के दौरान यह जरूरी है कि रचना की पूरी और गहरी जानकारी प्राप्त करने के बाद ही मूल पाठ को लक्ष्य भाषा में परिष्कृत और अनुकूल शैली में व्यक्त किया जाए। दानिका सेलेस्कोविच (Danica Seleskovitch)[4] तथा मरिआन्न लेदेरर (Marianne Lederer) के सिद्धांत के अनुसार यह प्रक्रिया 'डिवर्बलाइजेशन' (deverbalisation)[5] अर्थात 'अभाषीकरण' के माध्यम से संपन्न होती है। इस सिद्धांत के अनुसार अनुवादक को सबसे पहले मूल पाठ की भाषिक संरचनाओं से अपना पिंड छुड़ाकर रचना के संज्ञानात्मक (cognitive) स्तर पर पहुँचना चाहिए। इस संज्ञानात्मक स्तर पर मूल पाठ की भाषिक संरचनाएँ नहीं बल्कि स्थितियाँ, घटनाएँ तथा तार्किक संबंध-शृंखला ही शेष रह जाती हैं। इसके बाद इस संपूर्ण 'संज्ञानात्मक विषय-वस्तु' (cognitive content) को स्रोत भाषा की संरचनाओं से मुक्त करके लक्ष्य भाषा में व्यक्त करना चाहिए। किसी भाषा से ज्यों-के-त्यों लिए गए 'लोन ट्रांसलेशंस' (loan translations) तथा मक्षिका स्थाने मक्षिका जैसे अनुवादों जिनकी हर घटिया अनुवाद में भरमार रहती है से बचने का यही सबसे अच्छा रास्ता है। यह तो हुई पहले सिद्धांत की बात। दूसरा सिद्धांत पहले का प्रतिस्पर्धी है। यह सर्वविदित तथ्य है कि साहित्यिक रचना में बाह्य रूप यानी भाषिक संरचनाएँ, ध्वनि, शब्द तथा वाक्य-विन्यास आदि का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर अंत्वान बेरमान (Antoine Berman)[6] और वाल्टर बेन्यामिन (Walter Benjamin)[7] ने 'लिटरलिज्म' (literalism) को बढ़ावा दिया जिसके अनुसार अनुवादक को पाठ के शाब्दिक रूप से जुड़े रहकर ही अनुवाद करना चाहिए। निश्चय ही यहाँ पाठ के शाब्दिक रूप से जुड़ने का अर्थ काव्य की आत्मा की बलि देना कदापि नहीं होता। लेकिन अगर यहाँ 'शब्द' से आशय मूल पाठ के 'लोन ट्रांसलेशन' से ही निकाला जाए

तो इससे दूसरी संस्कृति नहीं बल्कि अनुवाद की बू ही निकलेगी। 'शब्द' मूल पाठ के 'लोन ट्रांसलेशन' से अलग होता है क्योंकि शब्द तक की पुनर्यात्रा के लिए हमें सबसे पहले शब्द से मुक्त होना पड़ता है। शब्द से दूर नहीं जाना है बल्कि शब्द की फिर से पहचान करना है। इस प्रकार पाठ के अभिव्यक्ति-पक्ष या कहें शाब्दिक रूप यानी पाठ में उपलब्ध अर्थजाल, मेटाफर, ध्वनियाँ, तालें, पुनरावृत्तियाँ, वाक्य-विन्यास आदि को समान या भिन्न भाषिक उपकरणों से लक्ष्य भाषा में पुनः प्रस्तुत किया जाना है। स्पष्ट है कि सबसे पहले रचना को भली-भाँति समझने की कोशिश की जानी चाहिए जिसका अर्थ है रचना के पूरे विन्यास को सही समझना। रचना में रचनाकार ने जो और जैसे कहा है उसके पीछे उसका क्या आशय है इसे अनुवादक को ठीक-ठीक समझना होता है। संक्षेप में, अनुवादक का रचनाकार के अभिव्यक्ति जगत की आंतरिक विवशता से वाकिफ होना अत्यंत आवश्यक है। रचनाकार की इस आंतरिक विवशता की समझ जो कि रचना का वास्तविक अर्थ होता है की गहरी पहचान हमें काफी हद तक 'डिवर्बलाइजेशन' की ओर उन्मुख करती है।

प्रश्न 5. : आपकी अनूदित कृतियों में किस कृति के अनुवाद में आपको विशेष आत्मतुष्टि हुई? क्यों?

उत्तर 5. : वैसे तो अपनी हर अनूदित साहित्यिक रचना के सौन्दर्य ने मुझे प्रभावित किया लेकिन शायद कृष्ण बलदेव वैद की रचना का अनुवाद करते समय मुझे विशेष आत्मतुष्टि हुई। इसका कारण यह रहा कि उनकी रचना का अनुवाद अनेक चुनौतियों से भरा था जिनका जमकर मुकाबला कर पाने से मुझे बहुत संतुष्टि हुई। ऐसा खासकर उन सभी स्थितियों में हुआ जहाँ लेखक भाषा के साथ खिलवाड़ करने में जुट जाता है और पाठ की आंतरिक संभावनाओं का भरपूर उपयोग करता है। यह प्रक्रिया रचना को अर्थ के व्यंग्यात्मक तथा विडंबनात्मक आयाम प्रदान कर देती है। यह सब कुछ कर पाने में मुझे सफलता मिली तो इसका कारण यही है कि लेखन-कला, जीवन-दर्शन और बुनियादी आस्थाओं की दृष्टि से वैद साहब मुझे बहुत नजदीक लगे। हम दोनों की साहित्यिक अभिरुचियों में पूरा मेल बैठने के कारण मेरे लिए उनका अनुवाद करना किसी बहुत ही जिगरी दोस्त से बात करने जैसा लगा। निर्मल वर्मा की रचनाओं का अनुवाद कर पाने से भी मुझे बहुत संतोष हुआ। उनके गद्य की काव्यात्मकता ने जो एक

तरह की विषण्णता और संगीतात्मकता या कहें गीतात्मकता से परिपूर्ण है मुझे उस युग के स्मृतिलोक में पहुँचाया जिसमें मार्गरिट दुरास (Marguerite Duras)[8] जैसी रचनाकार हुई थीं। इस फ़्रांसीसी लेखिका की स्मृति ने मुझे निर्मल वर्मा के अनुवाद को एक विशेष संगीतात्मकता प्रदान करने में मदद दी। निश्चय ही अनुपम मिश्र की 'राजस्थान की रजत बूँदें' ऐसी रचना है जो मेरी स्मृति में चिरस्थायी बन गयी है क्योंकि इस पुस्तक के अनुवाद के माध्यम से मुझे एक नई दुनिया की खोज करने का अवसर मिला है। यह है भारत की जल-संचयन की परंपरा जो वास्तविक पर्यावरण के माध्यम से पुनर्जीवित होती जा रही है। यह ठीक मेरे बचपन की खेतिहरों की दुनिया जैसी है। लेखक ने भारत की इस नैतिक, सामाजिक तथा तकनीकी परंपरा को बड़ी साहित्यिक संजीदगी से एक अत्यंत मँजी तथा साथ ही सरल भाषा में अपनी रचना में उतार दिया है। मुझे इस भाषा तथा जल-संचयन की लोक परंपरा और उसके सभी नैतिक तथा राजनीतिक आयामों को व्यक्त करने में बड़ा आनन्द आया। अंग्रेजी अनुवाद फ़्रांसीसी अनुवाद के एक साल बाद उसी के आधार पर तैयार किया गया, जिससे मुझे काफी आत्मतुष्टि हुई। लोक-साहित्य की इस परंपरा में मुझे उसी साल एक बहुत महत्वपूर्ण लेखिका गीतांजलि श्री के उपन्यास 'तिरोहित' और 'माई' पढ़ने का मौका मिला। इनकी रचनाओं में आधुनिक और पारंपरिक संसारों के सम्मिलन के साथ-साथ इनके बीच पैदा होने वाले तनाव और संघर्ष की भी अद्‌भुत झलक मिलती है। 'माई' को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका आरंभ से अंत तक 'मां' की खोज के साथ-साथ अपने लेखन की तलाश में दत्त है। इस लेखन में कुछ ऐसा है जो पारंपरिक वैशिष्ट्य और अत्याधुनिक से परे जाता है। उपन्यास की चरमसीमा तक अधूरापन नहीं बल्कि अनिश्चितता नही रहती है। अंत में कथा में 'मां' के रहस्य के खुल जाने पर भी 'पात्र' रहस्यमय ही बना रहता है। गीतांजलि श्री की भाषा एक तरह से उनकी कथा का ही दूसरा रूप है। इसलिए मुझे 'माई' का अनुवाद करते समय स्वयं अपनी भाषा की तलाश करते रहने में बहुत आत्मतुष्टि मिली।

यहाँ मैं यह जोड़ना चाहूँगी कि भले ही कोई उपन्यास कितना ही लंबा क्यों न रहा हो ('गुजरा हुआ जमाना' 580 पृष्ठ लंबा उपन्यास है जो अनूदित रूप में 612 पृष्ठ का बन गया है) इन सभी अनुवादों के दौरान

न तो मुझे कभी थकान महसूस हुई, न ही अनुवाद पूरा होने पर मुझे किसी तरह की राहत का अनुभव हुआ। अन्तिम पृष्ठ पर पहुँचने की अधीरता तो कभी नहीं। सच कहूँ तो आखरी पन्ना मेरे लिए रचना से कष्टकर विदाई जैसा लगा।

प्रश्न 6. : सफल अनुवादकों के सृजन के मकसद से अगर एक आदर्श अनुवाद पाठ्यक्रम बनाने का प्रस्ताव आए तो आप उसमें किन-किन विषयों को रखना चाहेंगी?

उत्तर 6. : अनुवाद के संदर्भ में आपका 'सृजन' शब्द का प्रयोग बहुत सटीक है क्योंकि साहित्यिक अनुवाद वास्तव में एक सर्जनात्मक कला है। और साथ ही एक कठिन शब्द का भी प्रयोग किया है जो है 'आदर्श'। जिस तरह मैं नहीं मानती कि कोई अनुवाद 'आदर्श' अनुवाद होता है, उसी तरह मेरे विचार में एक 'आदर्श पाठ्यक्रम' किसी औपचारिक (स्थापित) संस्था में शायद ही मिलेगा। दुनिया में जिन प्रसिद्ध संस्थाओं ने अनुवाद के प्रशिक्षण के उद्देश्य से उचित पाठ्यक्रम तैयार किये हैं वे साहित्यिक नहीं बल्कि सामान्य अनुवाद पर जोर डालते हैं। पर दोनों (साहित्यिक और सामान्य अनुवाद) कई सामान्य पद्धतियों और तकनीकों पर आधारित होते हैं इसलिए अच्छा पाठ्यक्रम इस मकसद से बनाना चाहिए कि वह छात्रों को इन पद्धतियों से परिचित कराए। इस संदर्भ में, जहाँ तक मैं फ़्रांस के छात्रों में अलग-अलग विधियों के परिणाम देख सकी, मुझे लगा कि प्रायोगिक अभ्यास सैद्धांतिक जानकारी से कहीं ज्यादा प्रभावी सिद्ध होता है। इसलिए किसी भी अच्छे पाठ्यक्रम में लगभग दो तिहाई भाग प्रायोगिक अनुवाद और उसके संबंधित अभ्यासों के लिए रखना आवश्यक है। सैद्धांतिक विषयों को (यानी अनुवाद के सिद्धांत, अनुवाद का इतिहास, भाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान, समाजशास्त्र आदि) लगभग एक चौथाई या एक तिहाई समर्पित करना काफी होगा।

अनुवाद के प्रायोगिक पक्षों में पुनर्विन्यास के विविध अभ्यास शामिल होते हैं। जैसे कि विश्वनाथ अय्यर ने कहा है,[9] 'एक भाषा के एक रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है'। लक्ष्य (मातृ) भाषा का एक पाठ या तो संक्षेप रूप में उसी भाषा में उतारना या फिर दूसरी शैली में अभिव्यक्त करना उन अभ्यासों का एक भाग होगा। स्रोत भाषा (मूल पाठ) के एक पाठ को लक्ष्य भाषा में विश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास और संश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास के रूप में दोबारा लिखना दूसरा भाग हो सकता

है। इन सब अभ्यासों के माध्यम से छात्र को अपनी भाषा को ज्यादा समृद्ध और लचीला बनाने का मौका मिलता है। दूसरी भाषा में भी छात्र इस पद्धति से अपनी क्षमता तथा दक्षता सुधार सकेगा। अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन एक और बहुत ही उपयोगी अभ्यास होता है।

सामान्य और साहित्यिक अनुवाद के पाठ्यक्रमों में फर्क यह होना चाहिए कि पहले में न्याय, अर्थशास्त्र और विज्ञान की मूल जानकारी एक महत्वपूर्ण विषय बनेगा लगभग 20 प्रतिशत जबकि दूसरे में साहित्यिक शैली के अध्ययन को पर्याप्त स्थान देना उचित होगा। इस संदर्भ में अपनी मातृभाषा के कई लेखकों के 'पास्टिश' लेखन का अभ्यास कराना उन लेखकों की शैलीगत विशेषताओं को ग्रहण करने का एक अच्छा उपाय बन सकता है। ऐसा करने से अनूदित लेखकों की शैली का विश्लेषण करने की और उसे फिर अपनी भाषा में उतारने की क्षमता बढ़ेगी।

पाठ्यक्रम में नई तकनीकों, 'टर्मिनॉलोजी' और 'लोकलाइजेशन' (यानी बाजार के समायोजन) की भूमिका पर भी आजकल बहस हो रही है (उदाहरण के लिए देखें फ. इजराएल की पुस्तक *''इक्कीसवीं शताब्दी के अनुवाद के लिए कौनसा प्रशिक्षण?''*)। जाहिर है कि साहित्यिक अनुवाद के पाठ्यक्रम में इन तीन विषयों में से केवल पहला विषय उपयोगी होगा।

जिस एक और बात पर जोर दिया जाना चाहिए वह यह है कि अनुवादक आगे चलकर केवल अपनी मातृभाषा में ही काम करे या फिर इस मामले में भारत के संदर्भ का ध्यान रखकर अपनी मातृभाषाओं में। यह सिद्धांत तकनीकी, आर्थिक और वैज्ञानिक अनुवाद के क्षेत्र में तो लागू होता ही है, साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में इसे और भी कठोर माना जाना चाहिए। आखिरी (पर अत्यंत महत्वपूर्ण) सुझाव यह है कि जितना समय अध्यापन के लिए कक्षा में दिया जाए कम-से-कम उतना ही समय छात्र को घर पर अपने व्यक्तिगत अभ्यास के लिए मिलना चाहिए।[10]

प्रश्न 7. : आपके मत में अनुवादक को अनुवाद कार्य के दौरान किन सोपानों से होकर गुजरना होगा ?

उत्तर 7. : जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुकी हूँ, मेरे विचार से रचना के मूल पाठ को पूर्णतः आत्मसात करने के बाद अनुवादक को सबसे पहले कृति की भाषिक संरचनाओं के परे जाना जरूरी होगा। अर्थात एक तरह से रचना को 'डिवर्बलाइज' करना होगा, फिर इन भाषिक संरचनाओं को नए सिरे

से दूसरी भाषा में व्यक्त करना होगा। इस प्रकार इस सेतु-निर्माण की प्रक्रिया में द्विभाषी होने के नाते अनुवादक को एक तरह से 'निर्भाषी' (अ-लिंग्वल) बनकर फिर अपनी मातृभाषा में पुनर्जन्म लेना होता है। इसके अतिरिक्त एक और आवश्यक कार्य होता है जिसे वह या तो शुरू में या अनुवाद के दौरान कर सकता है। यह है 'डोक्युमेंटशन' का काम। मेरे विचार में अनुवाद की आदर्श स्थिति वह होती है जिसमें मूल लेखक और अनुवादक की साहित्यिक अभिरुचियों में मेल बैठता हो। यानी अनुवादक ने भी वैसे ही साहित्य का अध्ययन किया हो जिसका अध्ययन लेखक ने किया हो। अनुवादक को भी ठीक वैसी स्थितियों से गुजरना पड़ा हो जिनसे होकर लेखक गुजरा हो। अर्थात् अनुवादक और लेखक की काव्यानुभूतियाँ तथा भाव-संवेदनाएँ आपस में पूरी तरह मेल खाती हों। जाहिर ही ऐसी आदर्श स्थिति संभव नहीं। फिर भी मेरे विचार में जहाँ तक हो सके अनुवादक को रचनाकार के मानस की अंतर्यात्रा करने का प्रयास करना चाहिए। जहाँ तक मूल पाठ के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक तत्वों का सवाल है मेरा मानना है कि अनुवादक को इनकी जानकारी प्राप्त करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। इस संबंध में एक उदाहरण देकर मैं अपनी बात स्पष्ट करना चाहूँगी। जब मैं 1998-1999 में अनुपम मिश्र की रचना 'राजस्थान की रजत बूँदें' का अनुवाद कर रही थी तो मुझे कुंड, कुइयाँ, आगोर आदि शब्दों का कोशीय ज्ञान ही था। इन कुंडों, तालाबों तथा आगोरों को साफ रखने की जटिल व्यवस्था के कई संदर्भ मेरी समझ से बाहर थे। अतः मैंने इनके बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी एकत्रित करनी चाही क्योंकि इन शब्दों का मात्र कोशीय ज्ञान निश्चय ही मुझे अनुवाद के दौरान भ्रमित कर सकता था। इस बाबत मैंने राजस्थान जाकर इन जल संचय के साधनों को अपनी आँखों से देखा। यही नहीं मैंने वहाँ पर काम करने वाले लोगों से इनकी सफाई की व्यवस्था, जल-संचय तथा जल की वितरण-व्यवस्था को भी पूरी तरह समझना आवश्यक समझा। जाहिर है कि एक दशक बाद अब बहुत सी जानकारी वेब से मिल सकती है, फिर भी अनुपम मिश्र के सर्जनात्मक रवैये (creative attitude) और उनकी शैली को फ़्रांसीसी भाषा में उतार पाने में मुझे इस मानव संपर्क से 'अनुपम' मदद मिली ही थी।

जहाँ तक शब्दकोष के प्रयोग का प्रश्न है, मेरा अनुभव है कि अनुवाद

के दौरान स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के एकभाषी शब्दकोष द्विभाषी कोषों से कहीं ज्यादा उपयोगी सिद्ध होते हैं। हमारी आज की दुनिया में नई प्रौद्योगिकी भी अनुवादक के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध होती है।

अनुवाद-कार्य के ये चरण ऊपर से साधन मात्र ही प्रतीत होते हैं। पर अनुवादक अगर दो भाषा-संसारों के बीच वार्तालाप स्थापित करने के अपने साध्य से जुड़ा रहे तो ये साधन ही साधना माने जा सकते हैं। जितनी तृप्ति उसे अपने कार्य को पूरा करने में मिलती है उससे कहीं ज्यादा आनंद उसे काम करने में मिलता है।

प्रश्न 8. : अनुवाद के दौरान अनुवादक को किस हद तक मूल लेखक के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और किस हद तक लक्ष्य भाषा के पाठकों का ध्यान रखना चाहिए? आपके विचार में अनुवाद में कुछ छोड़ने और जोड़ने की स्वतंत्रता भी है?

उत्तर 8. : मेरे विचार में अनुवादक का लेखक के प्रति निष्ठावान होना बहुत ही जरूरी होता है। बशर्ते 'निष्ठावान' शब्द की परिभाषा को थोड़े व्यापक अर्थ में लिया जाए। मेरा मानना है कि शब्दशः अनुवाद करना लेखक के साथ अत्याचार करना होता है। अगर हम इस विषय पर अम्पारो हुर्टाडो अल्बिर (Amparo Hurtado Albir)[11] की सारगर्भित पुस्तक पर एक नजर डालें तो हमें वहाँ स्पेनिश-फ़्रांसीसी के बहुत से ऐसे उदहारण मिलेंगे जहाँ लक्ष्य पाठ के वाक्य मूल पाठ के वाक्यों से काफी अलग हैं। यहाँ एक सवाल उठता है कि अनुवादक सही अर्थों में लेखक के प्रति किस हद तक निष्ठावान हो सकता है। क्या लेखक के प्रति निष्ठावान होने का मतलब मूल पाठ के 'सब कुछ' को अनूदित पाठ में लाना होता है, या फिर 'सब कुछ' को लाने का भरसक प्रयास करना? मेरे विचार में 'सब कुछ' ईश्वर के साम्राज्य का शब्द है! हमें तो यहाँ यह देखना चाहिए कि अनुवादक की सीमित क्षमता की पकड़ में यह 'सब कुछ' क्या हो सकता है।

जहाँ तक अनुवाद में कुछ छोड़ने और जोड़ने की बात है मेरे अनुसार यह मुद्दा अनुवाद को अनुकूल बनाने से जुड़ा है जो हमें 'बेल इनफिदेल' (belles infidèles)[12] का स्मरण कराता है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में ग्रीक और लेटिन से अनूदित लेखकों की सीधी, सपाट और अश्लील भाषा को परिमार्जित करने का सिद्धांत प्रचलित था जिसके अनुसार भाषा की अश्लीलता और शब्दों के लट्ठपन से बचने का हर प्रयास किया जाना चाहिए

था। इस सिद्धांत के अनुसार अनुवाद को इतना सुंदर होना चाहिए कि पाठक को वह अपनी भाषा में अनूदित लगे। हालाँकि आजकल अनुवाद के अनुकूलीकरण के इस रास्ते को सभी छोड़ चुके हैं, यहाँ तक कि इस तरह के प्रयास कटु आलोचना का विषय बनते हैं, फिर भी आज के अनुवादक को दूसरी तरह के अनुकूलीकरण का सामना अभी भी करना पड़ता है। 'तमीज' और सुंदरता का अर्थ भले ही क्यों न बदल गया हो, पर पाठकों की पसंद (या फिर संपादक की दृष्टि में पाठक की संभावित माँग) काफी हद तक पाठ को मान्य या अमान्य करती है। उदाहरण के लिए, प्रकाशक चाहते हैं कि अनुवाद अत्यंत दीर्घ, अत्यंत लघु तथा अपूर्ण वाक्यों से मुक्त हो। साथ ही पुनरावृत्तियों से भी मुक्त हो। यही नहीं, उनके अनुसार अनुवाद को रेडियो या किसी अकादमी या 'क्रियेटिव राइटिंग वर्कशॉप' की भाषा के अनुकूल होना चाहिए। उन्हें पसंद नहीं कि पाठक को किसी अनजान राह पर ले जाने का प्रयास किया जाए। इस संदर्भ में एक व्यक्तिगत उदाहरण निर्मल वर्मा के अनुवाद से देना चाहूँगी। निर्मल वर्मा के विरामचिह्न बहुत खास होते हैं, पूर्णविराम के स्थान पर वे अक्सर ' ' या '...' का प्रयोग करते हैं, जो मेरे फ्रांसीसी संपादक को बिल्कुल अच्छे नहीं लगे। जब मैंने उनके पहले उपन्यास *'एक चिथड़ा सुख'* का अनुवाद किया तब इस विराम शैली को स्वीकृति नहीं मिली। प्रकाशक ने सभी जगह पूर्ण विराम लगा दिए जो कि किसी आलाप को तोड़ने के बराबर था। निर्मल वर्मा के काव्यात्मक गद्य की यह संगीतात्मक अनिश्चितता उनकी रचनाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनती है। बाद में, जब मैंने उनके एक दूसरे उपन्यास *लाल टीन* की छत का अनुवाद उसी प्रकाशक के लिए किया तो मुझे इस बार इस शैली के गहरे कारण, उसकी आंतरिक आवश्यकता को कई स्पष्टीकरण देकर समझाना पड़ा। आख़िर में काफी खींचातानी के बाद जो कुछ मैं चाहती उसे मंजूर कर लिया गया। इसी तरह जो शब्द 'उपयुक्त' न हों, या कम-से-कम संपादक को 'उपयुक्त' न लगते हों अगर अनुवादक ने उनके 'अटपटेपन' के आंतरिक कारण को लिया हो तो उसे अपने मत पर अडिग रह कर प्रकाशक के पास जाना चाहिए।

दरअसल पाठकों की या कहें बाजार की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर अनुवाद करना साहित्य की दुकानदारी करना होता है। सर्जनात्मक साहित्य-सृजन हेतु आयोजित कार्यशालाओं में ऐसा ही करने का प्रयास होता है। लेकिन

मेरा मानना है कि सर्जनात्मक साहित्य की सच्ची रचनाओं को हर हालत में बाजार की अपेक्षाओं के अनुकूल बनना ठीक नहीं। मेरे अनुसार बाजार की माँग की परवाह न करने वाली रचनाएँ सच्चे अर्थों में सर्जनात्मक कही जा सकती हैं। ठीक इसी प्रकार साहित्यिक रचनाओं के अनुवादों को भी ऐसी मर्यादाओं को तोड़ने का अधिकार होता है। ऐसा करने पर ही किसी संस्कृति की भिन्नता दूसरी संस्कृति को प्रभावित कर सकती है।

प्रश्न 9. : अपनी पढ़ी हुई अनूदित रचाओं में किन रचनाओं ने आपको प्रभावित किया? उन अनुवादकों की विशेषताओं को संक्षेप में बताइए।

उत्तर 9. : मुझे 1982 निर्मल वर्मा की पहली झलक कृष्ण बलदेव वैद के अंग्रेजी अनुवाद Days of longing से मिली जो *'वे दिन'* के अकेलेपन, विरह, स्वप्न मिश्रित वातावरण को सुंदर तथा संगीतात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। 'वे दिन' निर्मल वर्मा का सबसे अच्छा उपन्यास नहीं है पर इस अनुवाद में कुछ ऐसा था जिससे मैं लेखक की दुनिया की ओर इतनी आकर्षित हो गई कि मैंने मूल पाठ पढ़ना चाहा। उन दिनों मेरा हिंदी-अध्ययन आरंभिक चरणों में था। फिर भी जाहिर है कि पाठक को अपनी मातृभाषा में लिखित अनुवाद का मूल्यांकन करना ज्यादा आसान होता है। फ्रेंच पाठकों को नोबेल पुरस्कृत जर्मन लेखक पेटर हांडके की कृतियाँ बड़े समर्थ अनुवादक जी. ए. गोल्डश्मिट[13] की योगदान से पढ़ने को मिलीं। उनके अनुवादों का इतना अच्छा होने का करण यह है कि वे खुद लेखक होने के साथ-साथ हांडके के बड़े प्रशंसक और दोस्त भी हैं। इसी कारण वे हांडके की दुनिया को पूरी तरह समझकर दूसरी भाषा में व्यक्त करने की क्षमता और आंतरिक इच्छाशक्ति भी रखते हैं।

इनके अलावा जर्मन लेखक अल्फ्रेड दोब्लिन के *'बर्लिन, अलेक्जेंडर प्लात्स'* ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया। मैंने इसे बहुत पहले पढ़ा था। इसका पहला फ्रांसीसी अनुवाद बहुत अच्छा नहीं था। इसलिए यह मुझे सही अर्थों में प्रभावित नहीं कर पाया हालाँकि आलोचकों ने इस रचना की तुलना जॉयस (James Joyes) के *'यूलिसस' (Ulysses)* तथा दोस पास्सोस (Dos Passos)[14] के *'मेनहट्टन ट्रांसफर' (Manhattan Transfer)* तक से की थी। जब 2009 में मैंने दुबारा ओलीवर ल ले (Olivier Le Lay)[15] द्वारा किए गए अनुवाद को पढ़ा तब कहीं जाकर मैं इस तुलना के कारण को समझ पायी। नायकों के स्वकथनों में प्रयुक्त गुंडों की बोली तथा बर्लिन

की बोली जो मानक या उच्च जर्मन से बहुत अलग है को बड़ी सफलता से हूबहू फ़्रांसीसी भाषा में ले आने में अनुवादक को इस बार बड़ी कामयाबी मिली। यही नहीं, आंदोलन की प्रेरणा और वैचारिक सटीकता की ऐसी शक्ति जो बौद्धिक विश्लेषण के बिना उस समय की दिल दहला देने वाली समाज-व्यवस्था को उधेड़ कर रख देती है, इस बार अच्छी तरह व्यक्त हो पाई है। मुझे लगता है कि सेलिन (Céline) जो प्रूस्त (Proust) के साथ बीसवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी साहित्य की गिनीचुनी हस्तियों में से हैं के अनुवादकों को भी इसी तरह की समस्याओं से जूझना पड़ा। इसके विपरीत दूसरा उदाहरण जॉयस (James Joyce) के फ़्रांसीसी अनुवाद का है। जॉयस का एक बहुत पुराना अनुवाद सन् 1929 में निकल चुका था लेकिन इसे मूल पाठ से दूर तथा इक्कीसवीं सदी की रुचियों के अनुपयुक्त माना जाता था। इसलिए 2004 में पेरिस के गालीमार (Gallimard) प्रकाशन ने इसे पुनः प्रकाशित करने की योजना बनाई। इस नए अनुवाद की जिम्मेदारी मशहूर लेखकों, पेशेवर अनुवादकों तथा जॉइस के विश्वविद्यालयी विशेषज्ञों को दी गई। इस सामूहिक प्रयास का उद्देश्य था सन् 1929 में निकले पुराने अनुवाद को अधुनातन बनाना। हालाँकि इस नए अनुवाद में जॉयस के शब्द-क्रम को हूबहू रखने का प्रयास किया गया है तथा रचना के 18 वक्ताओं को अलग-अलग अनुवादकों ने व्यक्त किया है, फिर भी मेरे विचार से इस सामूहिक प्रयास का परिणाम पुराने अनुवाद की तुलना में निराशाजनक ही रहा है।

प्रश्न 10. : विदेशी भाषाओं के साहित्य का अंग्रेजी माध्यम से अनुवाद करते समय भाव का एक बड़ा प्रतिशत विलुप्त हो जाता है। आपकी जानकारी में किन-किन भाषाओं से हिंदी में सीधा अनुवाद करने में समर्थ अनुवादक मौजूद हैं?

उत्तर 10. : विदेशी भाषाओं से हिंदी में सफल अनुवाद करने वाले कई लेखक अवश्य होंगे लेकिन इनसे मेरा परिचय नहीं है। फ़्रांसीसी से सीधे हिंदी में अनुवाद करने वालों के बारे में भी मेरी जानकारी कम है, पर मुझे लगता है कि अक्सर इन अनुवादों को करनेवाले असली साहित्यिक अनुवादक नहीं विश्वविद्यालय के छात्र (या शिक्षक) हैं। फ़्रांसीसी साहित्य के महान लेखकों की रचनाओं के जो अच्छे अनुवाद हिंदी पाठक तक पहुँचे हैं वे अक्सर मशहूर हिंदी लेखकों द्वारा अंग्रेजी के जरिए किए गए हैं। उदाहरण के लिए राजेन्द्र यादव का अलबर्ट कामू (Albert Camus)[16] तथा कृष्ण बलदेव वैद के

रासीन (Jean Racine) तथा पन्योल (Marcel Pagnol)[17] के अनुवाद। रूसी भाषा से भीष्म साहनी ने भी अच्छे अनुवाद किए। चेक भाषा से निर्मल वर्मा द्वारा किए गए अनुवाद मैंने पढ़े हैं। खासकर बहुमिल ह्बाल (Bahumil Hrabal)[18] की रचना का अनुवाद जिसे मैंने फ़्रांसीसी अनुवाद से पहले पढ़ा। मेरी इन भाषाओं की जानकारी इतनी नहीं कि अनुवादों की विश्वसनीयता के बारे कुछ कह सकूँ। चेक भाषा की तो बिल्कुल ही नहीं। फिर भी इतना तो कह सकती हूँ कि अनुवादों की हिंदी बहुत बढ़िया है जो अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती। मुझे खासतौर से निर्मल वर्मा द्वारा चेक भाषा से किए गए अनुवादों ने प्रभावित किया है। पिछली शताब्दी के पाँचवे, छठे और सातवें दशकों में भारतीय लेखकों की सोवियत ग्रुप के देशों में यात्रा तथा निवास की उपयोगी परंपरा चलती रही, लेकिन आजकल जब भारतीय लेखक किसी दूसरे देश में कुछ समय के लिए निवास करने जाते हैं तो सामान्यतः उनका उद्देश्य इस देश के महान लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करना नहीं होता। पुराने जमाने में साहित्य के पेशेवर अनुवादकों के अभाव में हिंदी लेखक ही दूसरी भाषाओं के महान् लेखकों के अनुवाद किया करते थे। मुझे उम्मीद है कि नए उदीयमान अनुवादक शायद इस खाई को पाट सकेंगे।

प्रश्न 11. : अनुवाद के प्रचलित सिद्धांतों से इतर आप किसी अन्य सिद्धांत की पक्षधर हैं?

उत्तर 11. : इंटरप्रेटेशन के जिस सिद्धांत की प्रश्न 4 में चर्चा हो चुकी है मैं उसी की पक्षधर हूँ। दुर्भाग्य से फ़्रांसीसी दुनिया से बाहर इस सिद्धांत की जानकारी कम ही है हालाँकि आजकल जाने-अनजाने अनेक अच्छे अनुवादक इसका काफी हद तक प्रयोग करने लगे हैं (और किसी हद तक रवींद्रनाथ श्रीवास्तव और कृष्ण कुमार गोस्वामी अनुवाद-कला को प्रतीक सिद्धांत के साथ जोड़कर सेलेस्कोविच की जैसी ही अवधारणा के काफी पास पहुँच गए हैं[19])। इसके अतिरिक्त अनुवाद के क्षेत्र में जो अन्य समसामयिक सिद्धांत हैं उन्हें मैं सिद्धांत की जगह नियम या संहिताएँ ही ज्यादा मानती हूँ। उदाहरण के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण नियम यह है कि अनुवादक को अपनी दो या तीन भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों से लगातार जुड़े रहना चाहिए। किसी भी सिद्धांत के उपयोग के प्रति बहुत आशावान नहीं होना चाहिए। मुझे मालूम है कि बात थोड़ी भड़काने वाली लग सकती है लेकिन मेरे

अनुसार एक अभिनेता अक्सर अभिनय के बारे में अपने अनुभव से या दूसरे अभिनेताओं की भूमिकाओं से ही ज्यादा सीखता है न कि नाटक सिद्धांत के अध्ययन से। हम उदाहरण के तौर पर हबीब तनवीर के छत्तीसगढ़ी अभिनेताओं को ले सकते हैं, जो ज्यादातर 'अनपढ़' होने की वजह से अकेडमिक सिद्धांतों से वाकिफ नहीं थे। इसका मतलब यह नहीं है कि वे संस्कृतिहीन हों, या कि वे किसी प्रकार के बुद्धिजीवी न हों।[20] अनुवादक एक अभिनेता की तरह ही होता है जिसे पाठक के सामने किसी रचना को प्रस्तुत करना होता है। पर इस प्रक्रिया में अनुवादक को मूल लेखक से बढ़कर आगे न आने का संयम बरतना चाहिए। ऐसा न हो कि पाठक के पल्ले ऐसा विश्वविद्यालयी अनुवाद पड़े जिसमें हर तथ्य की व्याख्या हो या फिर ऐसा अनुवाद जिसमें अनुवादक का लेखक से बढ़कर कुछ और जोड़ने का प्रयास हो। यह जरूरी है कि अनुवाद में पाठक को महान् लेखक की आवाज सुनाई पड़े, न कि अनुवादक की। वास्तव में हिंदी शब्द 'अनुवाद' संवाहन की प्रक्रिया की ओर संकेत नहीं करता। यहाँ इस तथ्य पर ध्यान देना जरूरी है कि लैटिन के शब्द[21] से व्युत्पन्न यूरोपीय भाषाओं के शब्दों जैसे फ्रांसीसी के 'traduction', अंग्रेजी के 'translation' स्पेनिश के 'traducción' या इतालवी के 'traduzione' में मूलतः एक भाषा से दूसरी भाषा तक कुछ भेजने या संवहन करने का भाव है जबकि हिंदी शब्द 'अनुवाद' संवहन की उक्त प्रक्रिया की ओर संकेत नहीं करता। हिंदी शब्द 'अनुवाद' वास्तव में कोई 'शब्द', 'कथन' या 'वाद' होता है जिसे किसी अन्य 'तथ्य' या 'कथन' का अनुसरण करना होता है। दूसरे शब्दों में अनुवाद वह आवाज होती है जो मूल का अनुसरण करती है। निश्चय ही 'अनुवाद' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

हमें यह भी याद रखना है कि जिन पाठ का अनुवाद करने बैठे हैं, वह भले ही लिखित पाठ क्यों न हो, किसी खास वक्ता का संप्रेषण ही बना रहता है। मौखिक वचन की तरह वह किसी खास व्यक्ति के मुँह से किसी दूसरे व्यक्ति के कान तक पहुँचता है लिखित पाठ हमेशा किसी विशेष उच्चारण का चिह्न लिए होता है जो अपने विशेष ऐतिहासिक, सामाजिक तथा मानसिक संदर्भ से संबंधित होता है। अर्थ न तो शब्दों में न ही वाक्यों में सीमित रहता है। पाठ जो भी हो वक्ता अपने शब्द-वाक्यों को

एक संगठित समग्र और संपूर्ण व्यवस्था में बदल देता है जिसे 'डिस्कोर्स' कहा जाता है। इस संवाद या 'डिस्कोर्स' का अर्थ शब्दों से परे होता है, हालाँकि हम उसे केवल शब्दों में ही खोज सकते हैं क्योंकि वह शब्दों द्वारा उच्चरित होता है। अनुवाद को लेकर इस के दो परिणाम होते हैं, (1) अनुवादक को पाठ के प्रवाह या सातत्य की इज्जत करनी है, (2) वक्ता-श्रोता के संबंध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह शायद सबसे कठिन काम होगा। चूँकि अनूदित पाठ का पाठक मूल उच्चारक (लेखक) से एकदम अलग या विदेशी भी होता है, इसलिए सवाल उठता है कि अनुवादक को पाठक को कहाँ तक लेखक के पास ले जाना चाहिए या फिर लेखक को किस हद तक पाठक के पास ले जाना चाहिए ('एडेप्टेशन')। साधारण वार्तालाप में हमेशा समायोजन अनायास ही हुआ करता है, पर अनुवाद करते समय हमें इस बात पर सोचना है कि यह समायोजन किस तरह के सामंजस्य से किया जाए। जो 'स्थानीकरण' (localisation) का सिद्धांत सामान्य अनुवाद में प्रचलित है वह साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में पूरी तरह से लागू नहीं होता।

प्रश्न 12. : आपके विचार में अनुवादक पैदा होता है या प्रशिक्षण द्वारा तैयार किया जाता है? अनुवाद में प्रशिक्षण की आवश्यकता और महत्ता पर कृपया अपने विचार रखें।

उत्तर 12. : मेरे विचार में अनुवादक पैदा भी होता है और कुछ सीमा तक प्रशिक्षित भी। उदाहरण के लिए साहित्य का अनुशीलन किए बिना साहित्यिक अभिरुचि पैदा नहीं हो सकती। साहित्य-अध्ययन का काम सामान्यतः स्कूल में या घर पर ही शुरू होता है, सहज रूप में नहीं। साथ ही यह भी सही है कि जो लोग साहित्य का अध्ययन स्कूल में या घर पर करते हैं वे सब साहित्य-प्रेमी नहीं बनते। इतना होने पर भी साहित्य के अनुशीलन की जो स्वाभाविक वृत्ति होती है उसे फलने-फूलने के लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता होती ही है। ठीक ऐसी ही बात अनुवाद के बारे में है। अगर अनुवादक में पहले से ही भाषा के प्रति रुचि और किसी दूसरे की दुनिया को पाठक तक पहुँचाने की लालसा न हो तो किसी भी तरह का प्रशिक्षण क्यों न हो मेरे अनुसार वह बेकार ही होगा। इसके विपरीत अगर अनुवादक में भाषा के प्रति रुचि हो तो प्रशिक्षण बहुत उपयोगी साबित हो सकता है। आजकल इस क्षेत्र में कई स्थानों में महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा हैं जिनमें जेनेवा[22], पेरिस[23],

बेरूत[24] तथा ब्रुसेल्स[25] के संस्थान अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

इन सभी संस्थानों का काम तकनीकी अनुवादक और इंटरप्रेटर तैयार करना है। अतः चूँकि हर अनुवाद में इंटरप्रेटेशन और सामान्य अनुवाद के कुछ-न-कुछ तत्व होते ही हैं, इन संस्थानों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। फिर भी ब्रुसेल्स के इस्ती (ISTI) नामक संस्थान को छोड़कर अन्य संस्थाओं का उद्देश्य साहित्यिक अनुवाद का प्रशिक्षण देना नहीं है। साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में अन्य विश्वविद्यालयों के जो पाठ्यक्रम हैं लगभग सभी का स्तर घटिया है। इस प्रकार साहित्य-अनुवाद के उचित प्रशिक्षण की समस्या आज भी बनी हुई है। मेरे अनुसार यह प्रशिक्षण संस्थानों में नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार लेखन-कार्यशालाएँ लेखक की सर्जनात्मक शक्ति को नियमों या परिपाटियों के अंकुश में जकड़ कर रखती हैं उसी प्रकार साहित्य के अनुवाद का प्रशिक्षण भी अनुवादक की सर्जनात्मक प्रतिभा को सीमित कर सकता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि न तो लेखन कार्यशालाओं में असली लेखक का जन्म होता है और न ही प्रशिक्षण के माध्यम से सर्जनशील अनुवादकों का निर्माण।

प्रश्न 13. : सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद में सांस्कृतिक तत्वों का अंतरण होता है। सांस्कृतिक तत्वों के अंतरण की प्रक्रिया क्या होनी चाहिए?

उत्तर 13. : जहाँ तक किसी रचना के सांस्कृतिक तत्वों जैसे मर्यादा की भारतीय आचार-संहिता से संबंधित तत्वों को अनूदित कृति में लाने का सवाल है, मैं इसे निरर्थक समझती हूँ। निश्चय ही अनुवाद को पढ़ते समय पाठक के मस्तिष्क में अनेक प्रश्न गूँजते रहेंगे, लेकिन आगे चलकर पूरे पाठ को पढ़ने से उसकी जिज्ञासा शांत हो सकती है। उसे सहज ही स्पष्ट हो जाएगा कि एक भारतीय महिला जब किसी पुरुष से बात करती है तो आँखें क्यों नहीं उठाती या अपनी सास को दो टूक जवाब क्यों नहीं दे पाती। और अगर जवाब देने का साहस करती भी है तो इसका क्या परिणाम हो सकता है। कृष्णा सोबती की रचनाओं में इस तरह के उदाहरण पग-पग पर मिलते हैं। मेरा मानना है कि एक लंबी रचना के अनुवाद में व्यक्त किसी भिन्न संस्कृति के व्यंग्यार्थ या निहितार्थ बिना किसी तरह की टिप्पणियों के ही पाठक तक पहुँच सकते हैं। उदाहरण के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी साहित्य-संसार फ्रांसीसी साहित्य-संसार से काफी भिन्न होने पर भी महान् रूसी लेखकों के अनुवादों की वजह से आज फ्रांसीसी पाठकों के लिए

अपना बन चुका है। या फिर जापानी साहित्य का उदाहरण लें जहाँ अनुवादक संस्कृति के बारे में कुछ नहीं कहता फिर भी साहित्य के रसास्वादन में कोई बाधा खड़ी नहीं होती। निश्चय ही अनुवाद की भूमिका में इस प्रकार के सांस्कृतिक विघ्नों तथा उन सभी तथ्यों की चर्चा करना अच्छा होता है जिनके कारण पाठ का अर्थ धुँधला बना रह जाता है।

उसके अतिरिक्त दूसरे उदाहरण प्रश्न 4 के जवाब में देखिए।

प्रश्न 14. : अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष को सशक्त करने में अनुवाद संबंधी पत्र-पत्रिकाएँ किस तरह उपयोगी होती हैं?

उत्तर 14. : मुझे अनुवाद करते समय इस क्षेत्र में प्रकाशित विशिष्ट तकनीकी पत्रिकाओं चाहे वे फ़्रांसीसी की हों या अंग्रेजी की या फिर हिंदी की (उदाहरण के लिए हिंदी में 'अनुवाद', फ़्रेंच में 'मेता' या 'त्रांसलिट्रेचर')[26] से लिए गए वास्तविक उदाहरण अत्यंत उपयोगी लगे, ख़ासकर तुलनात्मक अनुवाद के उदाहरण और अनुवादकों की अनुभूतियों का विश्लेषण। इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं कि इस तरह की पत्रिकाओं में प्रकाशित अन्य सामग्री जैसे अनुवाद का सैद्धांतिक विश्लेषण, अनुवाद के किसी सिद्धांत की आलोचना आदि में मुझे कोई दिलचस्पी न हो। मेरी सबसे ज्यादा रुचि ज्ञान की उस शाखा में है जिसे आधुनिक भाषा में 'traductologie' (अनुवाद-विज्ञान) कहा जाता है। इतना होने पर भी अपने अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष को सबल बनाने में मैंने इसका बहुत कम उपयोग किया। मेरे विचार में यह ठीक वैसे ही है जैसे भाषाविज्ञान अत्यंत दिलचस्प विषय होते हुए भी किसी भाषा को बोलना सीखने में बहुत कम सहायक होता है। या फिर जैसे चलने की क्रिया का सैद्धांतिक ज्ञान हमें चलने में किसी तरह मददगार नहीं हो पाता ठीक उसी तरह अनुवाद-विज्ञान का सैद्धांतिक ज्ञान अनुवाद करते समय कम ही उपयोगी सिद्ध होता है।

प्रश्न 15. : उदीयमान अनुवादकों के लिए आपका संदेश क्या है?

उत्तर 15. : सबसे पहले इस पर बल देना चाहूँगी कि अनुवादक को किसी विदेशी भाषा में नहीं बल्कि अपनी मातृभाषा में (या फिर भारत के संदर्भ में अपनी मातृभाषाओं में) अनुवाद करना चाहिए। यह सिद्धांत सामान्य अनुवाद के क्षेत्र में लागू होता है, साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में इसका कार्यान्वयन और भी आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त उदीयमान अनुवादकों को सबसे पहले तो अनुवाद के काम

को जिम्मेदारी से पूरा करने की सलाह दूँगी क्योंकि यह लेखक और पाठक दोनों के साथ ईमानदारी होगी। साहित्य के अनुवाद के दौरान यह जरूरी होगा कि अनुवादक दोनों भाषाओं की साहित्यिक परंपराओं से अच्छी तरह परिचित हो। मात्र एक भाषा की साहित्यिक परंपरा का ज्ञान अच्छे अनुवाद के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। फिर भी अनुवाद करते समय दो भाषाओं की साहित्यिक परंपरा के झमेले में फँस कर उसे अपनी भाषा की साहित्यिक परंपरा को कभी भी नहीं भूलना चाहिए। लेखक के साहित्यिक परिवेश को भली-भाँति समझने के उद्देश्य से उसे लेखक के देश में कुछ समय बिताना अनिवार्य है। अनुवाद के दौरान अनुवादक को गिरगिट की तरह पाठक के सामने आना चाहिए। जैसे गिरगिट अपने को छिपाने के लिए बाहरी परिवेश के अनुकूल रंग बदल लेता है ठीक वैसे ही अनुवादक को हर कोशिश करनी चाहिए ताकि उसका व्यक्तित्व पर्दे के पीछे रहे, अनुवाद में उसका अपना ठप्पा न लगे। कहीं पाठक को यह न लगे कि 'यह अनुवाद फलाने अनुवादक का है', इसके बदले उसे यह लगे कि 'यह कहानी फलाने लेखक की है'। अर्थात् जैनेन्द्र कुमार, या निर्मल वर्मा की पहचान की झलक हो, एनी मॉन्टो की नहीं। अनुवादक को बहुरूपी तो होना ही चाहिए, उसे समझदार और संवेदनशील भी होना चाहिए। लेकिन उसका विशेष गुण शायद लेखक के सेवाभाव में वह नम्रता है जिससे अनुवाद एक तरह से 'सेवासदन' बन जाए।

इसके अलावा कुछ छुटपुट सुझाव भी देना चाहूँगी। मेरी राय में अगर अनुवादक को पुस्तक चयन करने की छूट हो तो उसे अनुवाद के लिए किसी ऐसे समसामयिक लेखक का चुनाव करना चाहिए जिसकी अपनी ख़ास शैली हो। उदाहरण के लिए फ़्रांसीसी समकालिक लेखक पिएर बेर्गुन्यू (Pierre Bergounioux), मिशेल वेलबेक (Michel Houellebeck), पिएर मिशों (Pierre Michon)। या फिर फ़्रेंच साहित्य के वे अनेक प्राचीन लेखक जिनका अनुवाद अभी तक नहीं हुआ। पुस्तक का चयन सिर्फ साहित्यिक फैशन को देखकर नहीं करना चाहिए। जैसे कुछ अनुवादक महिला साहित्य के वर्तमान फैशन से प्रभावित होकर किसी महिला लेखक की रचना का चयन करते हैं। मेरे अनुसार फ़्रांसीसी लेखक पिएर रभी (Pierre Rabhi)[27] जो कई मायनों में फ़्रांसीसी साहित्य के अनुपम मिश्र है से भी भारतीय पाठक को जरूर परिचित होना चाहिए।

अनुवाद के संदर्भ में कुछ विचार

- अर्थ शब्दों के परे होता है लेकिन वह हमें शब्दों में ही मिल सकता है, हमें उसे शब्दों में ही ढूँढ़ना है जहाँ वह नहीं होता। आधुनिक अलग-अलग धारणाओं के दार्शनिकों या भाषावैज्ञानिकों ने इस पर जोर दिया है कि भाषा में अर्थ इकाइयों से परे ही होता है, पर इकाइयों द्वारा ही उसे व्यक्त किया और समझा जा सकता है। शताब्दियों पहले भर्तृहरि ने भी यही बात अपने ग्रंथ में विविध स्पष्टीकरण देकर कही।[28] उनके स्फोट-सिद्धांत के अनुसार अर्थ अखंड होता है पर सिर्फ खंडित रूप में वाक्य की इकाइयों तथा शब्द के अक्षरों द्वारा ही व्यक्त हो सकता है, क्योंकि काल अखंड होते हुए भी मनुष्य की इंद्रियों द्वारा उसे समय की इकाइयों के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। और भाषा कालबद्ध होती है। अनुवाद स्फोट के रास्ते का अंतिम पड़ाव होता है। उसका मकसद परम कला की तरह उस बिंदु तक पहुँचने का होता है जहाँ से अखंड अर्थ/काल की दुनिया खुल जाती है।
- काफ्का ने अपने व्यक्तिगत नोट्स में लिखा है कि "सत्य अखंडित होने की वजह से अपने आप को नहीं पकड़ सकता"[29]। इसलिए जो कोई सत्य को पकड़ना चाहता है उसे झूठा बनना होता है। जहाँ तक भाषा झूठ की संभावना प्रदान करती है, वह सत्य की रक्षा भी कर सकती है (ब्रह्म निराकार, निरंजन और निर्गुण है लेकिन संसार की अभिव्यक्ति माया से ही होती है)
- अगर भाषा केवल एक कोड होती तो विश्वभर में एक ही भाषा होती स्वर्ग की भाषा!? अलग-अलग भाषाओं की विविधता न होती बाबेल का नरक!? और अनुवादकों की जरूरत न होती। भाषा कोड होती तो हरेक शब्द सही होता और हर आदमी दूसरे की बात ठीक उसी तरह समझ सकता जिस तरह दूसरा आदमी अपनी बात खुद समझता। लेकिन वास्तविक दशा ठीक विपरीत होती है। जो मैं कहती हूँ उसे आप दूसरे अर्थ में लेंगे कुछ अलग, बहुत अलग, एकदम अलग और दूसरी ओर मैं भी अपने बोले के पूर्ण अर्थ को नहीं समझ पाती। भाषावैज्ञानिक कुल्योली का अनुकरण करते हुए लाकाँ ने कहा है कि "बोधगम्यता गलतफहमी का एक विशेष संयोग है"[30]। अनुवाद इस 'विशेष संयोग' का चरम बिंदु है।
- श्लायरमाशेर[31] के अनुसार अनुवाद का काम आतिथ्य का सुंदर काम है। परस्पर परोपकार जैसा। विदेशी भाषा का स्वागत करना, जिसमें विदेशी भाषा भी हमारा स्वागत करती है। अनुवाद करते समय मैं चाहती हूँ कि फ्रेंच भाषा में हिंदी

भाषा तथा संस्कृति का स्वागत करूँ पर उसी समय जब मैं हिंदी भाषा तथा संस्कृति में प्रवेश करती हूँ हिंदी भाषा मेरा स्वागत करती है। स्वागतम् मतलब भाषा के घर को अतिथि के लिए खुला बनाए रखना। पर इसे खुला बनाए रखने के लिए घर चलाने की दक्षता होनी चाहिए... नहीं तो, घर घर नहीं बाजार बन जाएगा, जहाँ 'सब कुछ' 'कुछ नहीं' के बराबर होगा।

- 'उधर' से 'इधर' तक की यात्रा में अगर अनुवादक 'उधर' के शब्दों और संरचनाओं को 'इधर' की भाषा में अनाड़ी कुली की तरह इधर-उधर रख दे तो अनुवाद में 'उधर' की (सु)गंध नहीं, 'इधर' के असफल प्रयत्न की (बद)बू ही आएगी। अगर अनुवादक रसिक बनकर अपने अनुवाद को 'उधर' की हवा से सुगंधित करे, तो अनूदित कृति मिलन का उल्लासमय उत्सव बनेगा। इस दृष्टि से अनुवाद कार्य को निश्चित रूप से 'आटिज्म' का इलाज माना जा सकता है!

संदर्भ

1. बीसवीं शताब्दी के प्रमुख फ़्रांसीसी लेखकों में लुइ-फर्दिनां सेलीन (Louis-Ferdinand Céline, 1894-1961) का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। सेलीन ने अपने लेखन के माध्यम से आधुनिक पश्चिमी साहित्य को एक नयी शैली प्रदान की है।
2. न केवल दीपेश चक्रबर्ती (*Provincializing Europe,* Princeton University Press, 2000) या पर्था चटर्जी (*The Nation and its Fragments,* Princeton University Press, 1993) जैसे 'सबाल्टर्निस्ट्स' ने बल्कि सुधीर चंद्र जैसे इतिहासकारों ने भी इस बात पर जोर दिया (*The Oppressive Present*, OUP, 1992).
3. हालाँकि 'अलेक्सांड्रिन' (aleandrin) शब्द के संकेत ग्यारहवीं शताब्दी में ही मिल जाते हैं, लेकिन फ़्रांसीसी साहित्य में इसका छंद या पद के रूप प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी तक जारी रहा।
4. पेरिस की प्रसिद्ध संस्था École Supérieure d'Interprètes et de Traducteurs (ESIT) की संस्थापिका दानिका सेलेस्कोविच (Danica Seleskovitch, 1921-2001) की प्रसिद्ध रचनाओं में *Interpréter pour traduire,* Didier Erudition, Paris, 1984 (चतुर्थ संस्करण 2001) उल्लेखनीय है।
5. मरिआन्न लेदेरर (Marianne Lederer) पेरिस के प्रसिद्ध सोरबोन विश्वविद्याल में अनुवाद-कला की प्रोफेसर रही हैं। उन्होंने अपने प्रकाशनों में सेलेस्कोविच के 'इंटरप्रेटेटिव' सिद्धांत को नए धरातलों पर परख कर देखा है।

6. अंत्वान बेरमान (Antoine Berman, 1942-1991) फ्रांसीसी अनुवादक तथा अनुवाद के सिद्धांतों के प्रणेता की रचनाओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–*L'épreuve de l'étranger: Culture et traduction dans l'Allemagne romantique: Herder, Goethe, Schlegel, Novalis, Humboldt, Schleiermacher, Hölderlin,* Gallimard, Paris, 1984 (पराये की परखः 19वीं शताब्दी की जर्मनी में संस्कृति और अनुवादः हेर्डेर, गेथे, श्लेगेल, नोवालीस, हम्बोल्ट, श्लेयर्माशेर) तथा *La traduction et la lettre, ou L'auberge du lointain,* Paris: Seuil, 1999 (अनुवाद और 'अक्षर' उर्फ दूर देश की सराय)।
7. जर्मन आलोचक, अनुवादक तथा दार्शनिक वाल्टर बेन्यामिन (Walter Benjamin, 1892-1940) ने इस संबंध में अपने विचार कई रचनाओं में व्यक्त किए हैं, जिनमें सबसे प्रसिद्ध 'अनुवादक का कर्तव्य' *(The Task of the Translator)* है।
8. प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार, नाटककार तथा फिल्म निर्देशिका मार्गुरिट दुरास (Marguerite Duras, 1914-1996) भाषा को संगीतात्मकता प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध रही हैं।
9. *अनुवाद की कला,* 1987, "अनुवाद के सिद्धांत और अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन", डा. देवेंद्र कुमार देवेश में उल्लेख।
10. सामान्य अनुवाद के लिए बनाए पाठ्यक्रम के कुछ उदाहरण
    http://www.inalco.fr/IMG/pdf/Brochure_TRM_2012.pdf
    http://www.unige.ch/traduction-interpretation/enseignements formations/ma-traduction_en-html#programme-cours
    http://www.univ-paris3-fr/26253210/0/fiche_formation/
11. बार्सेलोना विश्वविद्यालय में अनुवाद-कला की प्रोफेसर अम्पारो हुर्टाडो अल्बिर (Amparo Hurtado Albir) के चर्चित प्रकाशनों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं--*La notion de fidélité en traduction,* Didier Érudition, Paris, 1990; *Traducción y Traductología*, Cátedra, Madrid, 2001.
12. इस शब्द (का अर्थ बेवफा सुंदरी होता है, अर्थात जो विश्वासघाती होकर भी प्रेमिका बनी रहे), का तात्पर्य ऐसे अनुवादों से है जिन्हें अनुवादक ने बहुत सुंदर बना दिया हो। फ्रांस में जन्मे इस सिद्धांत के बारे में जोर्ज मूनें की बहुचर्चित पुस्तक (उसी शीर्षक से, 1955) में पूरी जानकारी प्रस्तुत है। निश्चय ही वह अनुवादक और प्रकाशक की रुचि पर निर्भर होता है।
13. गोल्डश्मिट ने अनुवाद की कला, जर्मन साहित्य और भाषा के बारे में बहुत कुछ लिखाः फ्रॉयड, हायडेगर, हांडके, रुस्सो, नीत्शे के बारे में पुस्तकें लिखीं।

लेखक की कृतियों में उनकी आत्मकथा भी पढ़ने लायक हैः 'नदियों को पार करते हुए' *La traversée des fleuves, Seuil)*। उनके अनुसार, भाषा मानवजाति का ऐसा बीहड़ होता है जिसका भाषाएँ अलग-अलग पगडंडियों से पार करती अवलोचन करती हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि दृश्य एक ही होने पर हमें दो अलग चित्रकारों द्वारा बनाए गए अलग-अलग चित्र मिलते हैं।

14. अमरीकी लेखक जॉन रोद्रिगो दोस पास्सोस (John Dos Passos, 1896-1970) अपनी साहित्यिक विचारधारा तथा सामाजिक विचारों के लिए जाने जाते हैं।
15. इस युवा फ़्रांसीसी अनुवादक द्वारा जर्मन से फ़्रांसीसी में किए गए लगभग सभी अनुवाद पुरस्कृत हो चुके हैं। इनके अनुसार अनुवाद एक कला है जिसके बीज अनुवादक में जन्मजात तो होते ही हैं लेकिन जिसे अनुभव द्वारा भी माँजा जा सकता है। अनुवाद एक तरह से शब्दों की कारीगरी होती है।
16. प्रसिद्ध फ़्रांसीसी उपन्यासकार, नाटककार तथा दार्शनिक अलबर्ट कामू (Albert Camus, 1913-1960) को उनके अस्तित्ववादी विचारों के लिए जाना जाता है। राजेन्द्र यादव ने *L'Etranger* का अनुवाद हिंदी में 'अजनबी' नामक शीर्षक से किया।
17. 'फेड्रा' (जां रासीन), राजकमलय 'तोपाज', मार्सेल पान्योल (Marcel Pagnol, 1895-1974) विश्वसाहित्य 1999।
18. प्रसिद्ध चौक लेखक बहुमिल ह्बल (Bohumil Hrabal, 1914-1997) अभिव्यक्ति पूर्ण दृश्यात्मक शैली में लिखने वाले लेखक के रूप में जाने जाते हैं। उनके साहित्य में मानव मन में चिर विद्यमान सौन्दर्य और क्रूरता के बीच का अंतर्विरोध प्रकट होता है।
19. जब यह कहते हैं कि 'संदेश संकेतित कथ्य का मर्म होता है, जो भाषिक, प्रतीक के संदर्भ में अभिव्यक्ति और कथ्य के समन्वयन से उभरता तो अवश्य है पर उसके दायरे में बंधा नहीं होता' (*अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ,* 1985)।
20. ग्रामशी के शब्दों में वे 'असली 'ग्रामीण बुद्धिजीवी' होते हैं।
21. Traducere (trans-ducere 'trans-lead', 'to transport' पार ले जाना) क्रिया से बने traductio का अर्थ 'किसी स्थान या दशा दूसरे स्थान या दशा तक ले जाने' का होता था।
22. स्विट्ज़रलैंड के जेनेवा शहर में École de Traduction et d'Interprétation नामक संस्था में काम हो रहा है।
23. पेरिस में इस क्षेत्र में दो शोध-केंद्र महत्त्वपूर्ण हैं (1) École Supérieur

d'Interprétation et de Traduction (ESIT) और (2) Institut Supérieur d'Interprétation et de Traduction (ISIT).

24. लेबनान में बेरूत के सेंट जॉसेफ विश्वविद्यालय का École d'Interprètes et de Traducteurs (EIT) अनुवाद के अध्ययन के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण है।
25. ब्रुसेल्स में Institut Supérieur de Traducteurs et d'Interprètes (ISTI) नामक संस्था महत्त्वपूर्ण है।
26. ए.टी.एल.एफ (साहित्य अनुवादकों का संगठन) की पत्रिका है। यह संगठन प्रति वर्ष कार्यशालाएँ भी चलाता है जिनकी प्रोसीडिंग्ज बाद में प्रकाशित होती हैं (Association des Traducteurs Littéraires de France, Assises de la Traduction Littéraire, Arles).
27. अल्जीरिया के जन्मे पिएर रभी (Pierre Rabhi, 1938-) ने भूमि-संरक्षण तथा पर्यावरण-प्रेम जैसे विषयों को लेकर फ़्रांसीसी भाषा में अनेक निबंध-संग्रह प्रकाशित किए हैं।
28. वाक्यपदीय, प्रथम कांड 'ब्रह्मन्' (परमसत्य, परमात्मन)।
29. काफ्का, हेफ्टे 3.5.
30. जाक लाकां (Jacques Lacan) एक बहुत मशहूर साइकोएनेलिस्ट (मनोविश्लेषक) हैं, जिनका दार्शनिकों और साहित्यकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा है, कुल्योली (Antoine Culioli) पेरिस के एक भाषावैज्ञानिक हैं जिन्होंने कथन उच्चारण की प्रक्रिया के सिद्धांत (Théorie des opérations énonciatives) को स्थापित किया है (Antoine Culioli : *Pour une linguistique de l'énonciation,* 1990).
31. Friedrich Schleimarcher फ़्रीडरीश श्लायरमाशेर (1767-1834) जर्मन दार्शनिक और भाषावैज्ञानिक होने के साथ-साथ बड़े अनुवादक भी थे। इन्होंने जर्मन भाषा में प्लेटो के पहले अनुवाद तैयार किए। अनुवाद के सिद्धांत के संदर्भ में उन्होंने अपने अनुवाद कार्य से संबंधित निबंध 'अनुवाद करने की विविध विधियों के बारे में' *(Ueber die Verschiedenen Methoden des Uebersezens)* में नई दिशाओं के रास्ते खोले जिनका अनुसरण कर आज हम आगे बढ़ सके हैं।

❑